ओ३म्

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका □ वर्ष-6 □ अंक-10 □ मुम्बई □ अक्तूबर-2015 □ मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज सान्ताक्रुज का 72वां स्थापना दिवस एवं वरिष्ठ नागरिक सम्मान समारोह के चित्र

"आर्य समाज के गौरव आचार्य देवव्रत जी"

आचार्य देवव्रत !

नामानुसार दैवीय सौम्यता की प्रतिमूर्ति और आचार्यो वाला गौरवशाली आदरणीय व्यक्तित्व।

पहली मुलाकात में उनका ऐसा प्रभाव मुझ पर पड़ा ६ फीट लम्बा कद, सादगी भरे सफेद वस्त्र, चेहरे पर लालिमा और सदाबहार मुस्कान उनके व्यक्तित्व को आकर्षक बना देती है।

कुछ दिन उनके साथ रहने से उनका अन्तर्मन जाना तो वो और भी श्रद्धेय हो गए। ऐसे कर्मयोगी नसीबों से किसी व्यक्ति, नगर, समाज, प्रदेश देश को मिला करते हैं। आज हम सबका सौभाग्य है कि आचार्य जी जैसे व्यक्ति को परखने वाला जौहारी भी इस देश में मौजूद है। मोदी जी का शतश: आभार जो उन्होंने एक सच्चे सही इंसान को चुन कर उसे उस स्थान पर बैठा दिया जिसके वो सच्चे हकदार हैं। बल्कि ये कहना भी अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उस पद के अहोभाग्य जो आचार्य जी ने उसे सुशोभित किया। हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल पद के लिए आचार्य जी को बधाई। बचपन से ही आचार्य जी जिस कुरुक्षेत्र के गुरुकुल में पढ़ते थे। उसकी जर्जर हालत को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। उनकी लगन क्षमता देखकर Trust ने उन्हें पदाभार देकर स्वयं भारमुक्त हो गए। इस संस्था का खास कुछ होना तो था नहीं। आचार्य जी की अल्पायु मात्र १६ वर्ष अनुभव हीन और सामने पहाड़ जैसी चुनौतियाँ। पर संस्था का तो मानो उस दिन भाग्योदय हुआ था। बड़ी कठिनाईयों से ही सही पर आचार्य जी एक एक बाधाओं से जूझते हुए संस्था का कार्यभार अपने कंधे पर उठाए रहे। पूरे दिन बच्चों को पढ़ाते, गुरुकुल बचाव, संचालन विकास के कार्यक्रम बनाते और रात वैदिक प्रचार के लिए गॉव गॉव निकल जाते। प्रचार करने भिक्षा माँगकर गुरूकुल चलाते। एक एक द्वार जाकर आग्रह करते कि वो अपने बच्चे गुरुकुल पढ़ने भेंजे। अगर बच्चे बिगड़ गए है तो भी उन्हें दे दें वो उसे इंसान बना कर उन्हें वापस कर देंगे। तब भी कोई गुरुकुल आने को तैयार नहीं होता था। लेकिन आज हालात ये हैं कि गुरुकुल में नए वर्ष पर प्रवेश के लिए जब ३०० बच्चे चाहिये होते हैं, तब साढ़े पाँच हजार प्रवेश पत्र आते हैं। ये आचार्य जी के अथक परिश्रम का ही फल है। आचार्य जी ने दम तोड़ते हुए गुरुकुल में नव जीवन संचार ही नहीं किया अपितु उसका स्वरुप ही बदल दिया। आज वह धरती पर स्वर्ग सा प्रतीत होता है। हर अतिथि अपने बच्चे को वहाँ पढ़ाने के लिए लालायित हो उठता है।

आचार्य जी ने प्रारंभिक दिनों में अपने सेहत की परवाह किए बगैर ही इतना रात-दिन परिश्रम किया कि एक बार तो वो ऐसे बीमार पड़ गए कि उनका बचना नामुमकिन सा प्रतीत हो रहा था। उस वक्त उनकी धर्मपत्नी तथा एक प्राकृतिक चिकित्सक (नैचुरोपैथ) की अथक सेवा से उन्हें नवजीवन दान मिला। तब आचार्य जी प्राकृतिक चिकित्सा के मूल मंत्र को समझ गए। उन्होंने उसमें ज्ञान प्राप्त कर गुरुकुल की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए और वहाँ एक हिस्से में प्राकृतिक चिकित्सालय भी उनकी निगरानी में सुचारू रूप से चलने लगा।

आज गुरुकुल जहाँ एक ओर वैदिक पद्धतियों से लेस हैं वहीं दूसरी ओर आधुनिक प्रणालियाँ भी बखूबी अपना स्थान बना रही हैं। प्राचीन तथा आधुनिक नवीनता का सही चयन कर आचार्य जी का गुरुकुल आज अति उत्तम वातावरण से सुरभित है जो हूबहु आचार्य जी की ही छवि लगता है।

२५० गौएं हैं वहाँ पर। एक एक को आचार्य जी नाम से जानते हैं। सबका दूध मशीनों से निकाल कर नलियों द्वारा टैंक में एकत्रित किया जाता है। गाय का गोबर मूत्र सबका इस्तेमाल गुरुकुल के खेतों में होता है। जहाँ organic farming होती है। चारों तरफ सुन्दर भवन (बच्चों की कक्षाएं, हॉस्टल, भोजनालय, पुस्तकालय, पाकशाला तथा अन्य कई) मैदान पार्क दिखाई देते हैं। खाद तैयार करना, औषधिया बनाना, १२०० बच्चे जो गुरुकुल में रहते हैं उनके पौष्टिक आहार की पूरे दिन तैयारी कहने का तात्पर्य है कि क्या क्या काम नहीं होता गुरुकुल में। बच्चों को केवल हिन्दी, इग्लिश, संस्कृत ही नहीं वरन वेद (वैदिक शिक्षा) के साथ घुड़सवारी, तिरन्दाजी, योगाभ्यास, शूटिंग वगैरह बहुत कुछ सिखाया जाता हैं। सुबह ब्रह्म मुहुर्त में ऑखें वहाँ स्वत: ही खुल जाती है। तभी बच्चे सामूहिक रूप से सुन्दर प्रार्थना करते हुए मैदान में दिखाई देते हैं। सभी अनुशासित बच्चे अपने आप में पूर्ण, शालीन, सेहतमंद सुशील से प्रतीत होते हैं। चिकित्सालय में रोगी रोते हुए आते हैं और हँसते हुए जाते हैं।

अध्यापक गण, छात्र, रोगी, चिकित्सक, कर्मचारी सभी आचार्य जी से व्यक्तिगत् रुप से यूँ जुड़े हैं जैसे आचार्य जी सबसे करीब उसी के हों।

आचार्य जी के बारे में जितना लिखो उतना कम है। सारांश में कहूं तो आचार्य जी एक ऐसा अनमोल रत्न हैं जो अपनी दिव्य आभा से जहाँ जाए वहाँ अद्वितीय माहौल बना देता है। कहते हैं राज्यपाल (गवर्नर) का रुतबा बहुत बड़ा होता है पर उनके लिए करने को कुछ खास नहीं होता। पर आचार्य जी हर पद की गरिमा बढ़ाने में सक्षम हैं। राज्यपाल का पद सम्भालते ही उन्होंने अपने आवास स्थान में आमूल चूक परिवर्तन कर दिया। अंग्रेजों के जमाने के बने बीयर-बार को तुड़वा कर वहा गौ शाला की स्थापना कर दी और वहाँ गौए रखकर उनकी सेवा सुश्रुषा में जुट गए। यही नहीं अपने भोजन से पूर्व गाय को रोटी देना कभी नही भूलते। एक गवर्नर ये भी कर सकता है, ऐसा लोग गर्व से अब उनके लिए सुना करेंगे। मैं बड़े विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि एक दिन वो भारत के सर्वोच्चतम् राष्ट्रपति पद को भी सुशोभित होंगे। उनको हम सब की बहुत सारी शुभकामनाऐं और ढ़ेर सारा प्यार ! अन्त में इतना ही कहूँगी आचार्य जी से-

जिंदगी की असली उड़ान अभी बाकी है।
देने हैं और भी इम्तेहान जो बाकी हैं।
अभी तो नापी है- ये ज़मीन आपने।
अभी तो सारा आसमान बाकी है।।

रेनु आर्या अग्रवाल (चैन्नई)

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ६ अंक १० (अक्तूबर - २०१५)

- दयानंदाब्द : १९२, विक्रम सम्वत् : २०७२
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११६

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
''आर्य समाज के गौरव आचार्य देवव्रत जी''	२
सम्पादकीय	३-५
भजन	५
''चार पुरुषार्थो की संक्षिप्त व्याख्या''	६-७
विचार शक्ति का चमत्कार/ आर्य समाज वाशी...	७
महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा दूरदर्शी मानव...	८-९
आज के संस्कार	९
राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्य समाज	१०
भगवान और ईश्वर शब्द की परिभाषा	११-१२
''स्वामी दयानन्द की दृष्टि में यज्ञ''	१२
तीन लोक	१३-१४
आर्य समाज सांताक्रुज़ समाचार	१४
उपासना-विधि	१५-१६

सम्पादकीय

आओ यज्ञ करें

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वरीय ज्ञान वेद (जो उस समय लुप्त होते जा रहे थे) हमें पुनः स्मरण कराया और कहा कि वेद ईश्वरीय ज्ञान का पुस्तक है एवं वेद में यज्ञ का विधान है। महर्षि के पूर्व यज्ञ के नाम पर अनर्गल पाखण्ड एवं आडम्बर फैला हुआ था, जिसके कारण कई महान विभूतियों ने यज्ञ के उस विकृत स्वरूप को देखकर उसके प्रति अश्रद्धा प्रकट की थी। परन्तु महर्षि ने तर्कों, प्रमाणों के आधार पर वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की पुनर्स्थापना की। यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया। किन्तु महर्षि ने किस यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया यह जानना आवश्यक है। वरना पूर्व की भान्ति हम कहीं फिर न अन्धकार में भटक जायें। आइये ! पहले महर्षिकृत् ग्रन्थों में महर्षि ने यज्ञ की व्याख्या कैसे लिखी है उसे हम समझने का प्रयत्न करें।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि ने लिखा है कि (यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु) इस धातु से 'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। यो यजति विद्वद्भरिज्यते वा स यज्ञः, जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है, और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि-मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे परमात्मा का नाम यज्ञ है, क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

तृतीय समुल्लास मे एक जगह लिखा है कि सन्ध्योपासना जिसे ब्रह्म यज्ञ भी कहते हैं। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र, विद्वानों का संग-सेवादि से होता है। सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में देवता की व्याख्या में महर्षि ने लिखा है कि यज्ञ को 'प्रजापति' कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। एक जगह लिखा है कि ईश्वर यज्ञ करने हारे का फलप्रदाता है।

ऋग्वेद वेदभाष्य में प्रथम मन्त्र, अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् मन्त्र के ईश्वराभिप्राय भावार्थ में महर्षि ने यज्ञ की विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है कि यज धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है। इसका यह अर्थ है कि अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त विविध क्रियाओं से जो सिद्ध होता है, जो वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा सब जगत् को सुख देने वाला है उसका नाम यज्ञ है। अथवा परमेश्वर के सामर्थ्य से सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों की जो एक अवस्थारूप कार्य उत्पन्न हुआ है जिसका प्रकृति, अव्यक्त और अव्याकृतादि नामों से वेदादि शास्त्रों में कथन किया है, उससे लेके पृथिवीपर्यन्त कार्यकारण संगति से उत्पन्न हुआ जो जगत् रूप यज्ञ है अथवा सत्यशास्त्र सत्य धर्माचरण सत्यपुरूषों के संग से जो उत्पन्न होता है, जिसका नाम विद्या, ज्ञान और योग है, उसका भी नाम यज्ञ है।

इसी मन्त्र के व्यवहारविद्या के अभिप्राय में वे यज्ञस्य देवं का भावार्थ लिखते हैं कि यज्ञ का देव अर्थात् विविध क्रियाओं से जो शिल्पविद्या बनती है उस विद्या का जो प्रकाश करने वाला है सो देव है। इसी मन्त्र के भावार्थ के पश्चात् अन्त में महर्षि लिखते हैं कि सायणाचार्य आदि ने भौतिक अग्नि का ही ग्रहण किया है, जिसमें होम करते हैं। इस अर्थ से भिन्न अर्थ का ग्रहण नहीं किया हैं। (यहां पाठक देखें कि महर्षि यज्ञ को सिर्फ भौतिक अग्नि तक ही सीमित न करके यज्ञ की व्यापकता का प्रतिपादन कर रहे हैं। यही°

- संगीत आर्य- 9323 573 892

भाव हम यज्ञप्रेमी पाठकों तक पहुँचाना चाह रहे हैं।)

भ्रान्ति निवारण पुस्तक में एक जगह महर्षि ने एक विद्वान के प्रश्नों के उत्तर देते हुए लिखा है कि अब 'यज्ञ' शब्द पर पंडितजी लिखते हैं कि यज्ञ और देव शब्द को मिला करके लिया है सो बात नहीं है। क्योंकि यह लेख और यन्त्रालय का दोष है। 'यज्ञज्य' यह शैषिकी षष्ठी है। पुरोहित, देव, ऋत्विक्, होता और रत्नधतमं ये सब यज्ञ के सम्बन्धी हैं और अग्नि के विशेषण हैं। यज्ञ शब्द का अर्थ जैसा भाष्य में लिखा है वैसा समझ लेना चाहिये और निरूक्ताकार भी वैसा ही अर्थ लेते हैं क्योंकि प्रख्यात् अर्थात् प्रसिद्ध जो तीन प्रकार का वेदभाष्य में यज्ञ लिखा है वह निरूक्ताकार के प्रमाण से युक्त है।

पञ्चमहायज्ञ विधि में अग्निहोत्र विधि के अन्त में महर्षि ने लिखा है कि अग्नि वा परमेश्वर के लिये, जल और पवन की शुद्धि का ईश्वर की आज्ञा-पालन के अर्थ होता जो हवन अर्थात् दान करते हैं उसे 'अग्निहोत्र' कहते हैं। केशर, कस्तुरी आदि सुगन्ध, घृत, दुग्ध आदि पुष्ट, गुड़-शर्करा आदि मिष्ट तथा सोमलतादि औषधि रोगनाशक, जो ये चार प्रकार के बुद्धि-वृद्धि, शूरता, धीरता, बल और आरोग्य करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है,उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म करने वाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है। तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे ऐसे प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है।

आर्योदेद्श्यरत्नमाला में यज्ञ की व्याख्या करते हुए महर्षि ने लिखा है कि जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त जो शिल्प व्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं। यजुर्वेद में तो यज्ञ की विस्तृत चर्चा है। आइये यजुर्वेद के कुछ मन्त्रों के भाष्य और भावार्थ को हम देखें

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।

परमेण धाम्ना दृंहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥2॥ (प्र. अध्याय)

पदार्थ- हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो वसोः= यज्ञ पवित्रम्=शुद्धि का हेतु असि = है, द्यौः= जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की करणों में स्थिर होनेवाला असि = है, जो पृथिवि = वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला असि = है जो मातरिश्वनः= वायु को घर्मः=शुद्ध करनेवाला असि= है, जो विश्वधाः= संसार का धारण करनेवाला असि= है तथा जो परमेण = उत्तम धाम्ना= स्थान से दृहस्व= सुख का बढ़ानेवाला है, इस यज्ञ का मा= मत ह्वाः= त्याग कर तथा ते= तेरा यज्ञपतिः= यज्ञ की रक्षा करनेवाला यज्ञमान भी उसको मा= न ह्वार्षीत्= त्यागे। धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है, अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिए विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध, अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं, उनका सत्कार करना। दूसरा, अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा, नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण, विद्या, सुख, धर्म और सत्य का नित्य दान करना है ॥2॥

भावार्थ- मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं, उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवि का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सबकी रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं, इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिए विद्या और पुरूषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥2॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।

देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिँ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥12॥ (प्र. अध्याय)

पदार्थ हे विद्वान लोगों! तुम जैसे सवितुः= परमेश्वर के प्रसवे= उत्पन्न किये हुए इस संसार में अच्छिद्रेण= निर्दोष और पवित्रेण = पवित्र करने का हेतु जो सूर्यस्य= सूर्य की रश्मिभि = किरण हैं, उनसे वैष्णव्यौ= यज्ञ सम्बन्धी प्राण और अपान की गति पवित्रे = पदार्थों के भी पवित्र करने में हेतु स्थः= हों और जैसे उक्त सूर्य की किरणों से अग्रेगुवः= आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष में चलें। अग्रेपुवः= प्रथम पृथिवि में रहनेवाली सोम ओषधि के सेवन करने तथा देवीः= दिव्यगुणयुक्त वः= वह आपः= जल पवित्र हों। वैसे नयत= पवित्र पदार्थों का होम अग्नि में करो। वैसे ही मैं भी अद्य= आज के दिन इमम्= इस यज्ञम्= पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके अग्रे= जो प्रथम सुधातुम्= श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धनवाला यज्ञपतिम्= यज्ञ का नियम से पालक तथा देवयुवम्= विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने यज्ञपतिम्= यज्ञ की इच्छा करनेवाला मनुष्य है; उसको उत्पुनामि= पवित्र करता हूँ॥12॥

भावार्थ - इस मत्र में लुप्तोपमालंकार है। जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं, वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं, परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि-जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती। इससे विद्वानों को

चाहिए कि होमक्रिया और वायु, अग्नि, जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बनाके अनेक प्रकार के लाभ उठावें, अर्थात् अपनी मनः कामना सिद्धि करके औरों की भी कामना सिद्धि करें। जो जल इस पृथिवि से अन्तरिक्ष को चढ़कर वहाँ से लौटकर फिर पृथिवि आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वे प्रथम और जो मेघ में रहनेवाले हैं, वे दूसरे कहाते हैं। ऐसी शतपथब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है ॥12॥

कृष्णो ऽस्याखरेष्ठो ऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥1॥ (द्वि. अध्याय)

पदार्थ जिस कारण यह यज्ञ आखरेष्ठः = वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर कृष्णः= भौतिक अग्नि से छिन्न, अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त असि = होता है, इससे अग्नये= भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने केलिए जुष्टम् = प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए त्वा = उस यज्ञ, अर्थात् होम की सामग्री को प्रोक्षामि = घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ और जिस कारण यह वेदिः = वेदी अन्तरिक्ष में स्थित असि = होती है, इससे मैं बर्हिषे = होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने के लिए जुष्टाम् = प्रीति सम्पादन की हुई त्वा = उस वेदी को प्रोक्षामि = अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ तथा जिस कारण यह बर्हिः = जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि करानेवाला असि = होता है, इससे त्वा = उसकी शुद्धि के लिए जो कि शुद्ध किया हुआ जुष्टम्= पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है, उसको मैं स्रुग्भ्यः = स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिए प्रोक्षामि = शुद्ध करता हूँ ॥1॥

भावार्थ ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री लेके उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम करके किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है। उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म हैं ॥1॥

पाठकगण देखें कि यज्ञ की इस विस्तृत विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि अग्निहोत्र को यज्ञ समझकर हम अपने ज्ञान व कर्म को मात्र भौतिक अग्नि तक ही सीमित रखेंगे तब हममें और अन्यों में क्या फर्क रह जायेगा। ईश्वर स्वयं यज्ञ कर रहा है, इस समस्त सृष्टि में ईश्वर की व्यवस्था में अलग अलग यज्ञ परोपकार हेतु हो रहे हैं। इन्हीं यज्ञों का प्रतीक ऋषि-मुनियों ने अग्निहोत्र को बताया है। आइये! हम यज्ञ के विस्तृत स्वरूप को हृदयंगम् करते हुए अपने व्यक्तिगत्, सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक परिवेश में यज्ञ करें वरना भय है कि अग्निहोत्र तक सीमित रहकर हम कहीं पुनः पाखण्ड़ व आडम्बर में न उलझ जायें।

ये रास्ता है लम्बा काहे करे अचम्भा
ये रास्ता है लम्बा ऽऽऽ
उस पार आनन्द इस पार सारे
ले चल ओ माँझी किनारे, किनारे
ले चल ओ माँझी किनारे॥
उसपार...

है लक्ष्य हमारा फौलादी, फौलादी
यो नि याँ हैं लाख चौरासी, चौरासी
दूर यहाँ से धाम प्रभु का (२)
हाल ना पूछो विकल जिया का (२)
गहरा सागर, डूबन का क्यों डर
जब हम हैं तेरे सहारे, सहारे.
ले चल ओ माँझी किनारे ॥
उसपार ...

लहरें देखूँ जी लहराये (२)
जल दर्पण में प्रभु मन भाये (२)
प्यासी अँखियाँ चाहे मन बसिया
बात मिलन की विचारे, विचारे
ले चल ओ माँझी किनारे ॥
ये रास्ता है लम्बा काहे करे अचम्भा
ये रास्ता है लम्बा

अन्तिसन्तं न जहातिअन्ति संन्न न पश्यति
देवपश्य काव्यं यो ममार न जीर्यति ।
कितना मीठा होता है कितना प्यारा होता है
ओ३म् ही ओ'म् में खो जाना, खो जाना,
प्रभु का हो जाना, प्रभु का हो जाना ॥
कितना मीठा....

क्या यही है इतने पास अन्त: करण में करे निवास?
फिर भी ना काहे देख सकें, क्यों होता ना आभास?
उसे देखना है देख ले वो कवि संसार का
ये सारा जगत रचा हुआ है जगताधार का ॥
कितना मीठा....

क्या यही है ओ३म् नाम, तीनों लोक जो रहा थाम
क्या यही है मस्त वो सोम, जिसमें रमा है रोम रोम
क्या यही जो मन में रहकर भी करवाता ढूँ ढ़ ढूँ ढ़
क्या उसकी ज्योति जागे तो पाते अमृत की बूंद
कितना मीठा....

क्या यही है वो जगत जो गतिमान सतत्
क्या यही है दिव्य दाता जिसकी चहुँदिस चारु चमक
क्या सामवेद का ओ३म् ही सुरीला साज है
वो कवि है उसके काव्य का ही अनहद नाद है॥
कितना मीठा....

ललित साहनी

"चार पुरुषार्थों की संक्षिप्त व्याख्या"

खुशहालचन्द्र आर्य

ईश्वर जब जीव को उसके धर्मानुसार धरती पर मनुष्य योनि में भेजता है तब उसको चार पुरुषार्थ करने का आदेश देता है, जिससे वह अच्छे धर्म करते हुए, अपने कर्त्तव्यों का भली-भांति पालन करते हुए तथा अपने जीवन को और दूसरों के जीवन को सुखी बनाते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके, जिसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर ने जीव को मनुष्य योनि में भेजा था। कारण मनुष्य योनि से ही जीव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। यही योनि मोक्ष प्राप्ति की अन्तिम योनि है। पुरुषार्थ चार हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। वैसे देखा जाये तो मोक्ष कोई पुरुषार्थ नहीं कारण यह तो धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का फल है, परिणाम है। यह कहने के लिए इसे भी पुरुषार्थ ही कह देते हैं। परन्तु वह पुरुषार्थ कैसे हो सकता है कारण पुरुषार्थ में तो कर्म करना पड़ता है, परन्तु मोक्ष में तो जीव को कोई काम नहीं करना पड़ता। वह तो केवल ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए सब किस्म के आनन्द को प्राप्त करता रहता है जिसे परम आनन्द कहते हैं। पहले के विद्वान मोक्ष यानि मुक्ति की कोई अवधि नहीं मानते थे। उनका कहना था कि मुक्ति का अर्थ ही होता है, हमेशा के लिए जीवन मरण से मुक्त हो जाना यानि मुक्ति मिलने के बाद फिर कभी भी जन्म नही लेना होता परन्तु महर्षि दयानन्द का मानव-मात्र पर यह एक बहुत बड़ा उपकार है कि उन्होंने मुक्ति की भी एक अवधि बताई है। महर्षि का कहना है कि जिन अच्छे कर्मो से मुक्ति मिली है, जब उन अच्छे कर्मो के करने की कोई अवधि होती है तो उसके फल के रूप में मिली मुक्ति की भी अवधि होनी जरूरी है चाहे वह कितनी भी लम्बी हो। इसी आधार पर महर्षि जी ने वदों से जानकर मुक्ति या मोक्ष की अवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष की मानी है।

पुरुषार्थ के बारे में यह बताना उचित है कि पुरुषार्थ का तात्पर्य है कि किसी काम को कर्तव्य व परोपकार की भावना से पूरे मनोयोग के साथ तथा पूरे साहस और उत्साह के साथ किसी काम को किसी अच्छे उद्देश्य के लिए करना ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ बुद्धि पूर्वक व सात्विक भाव से ही होता है, इसलिए केवल मनुष्य को ही पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृंक्षादि को नही कारण ये सब केवल भोग योनियाँ हैं। इनके किये हुए कर्मों का फल हमको नहीं मिलता। ये योनियाँ केवल स्वभाविक कर्म ही करती है यानि सोना-जागना, उठना बैठना, खाना-पीना तथा सन्तान पैदा करना आदि। इन कर्मों में पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता नही। परन्तु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जो भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि भी है। इसको अपने लिये हुए अच्छे या बुरे कर्मो का फल ईश्वर की न्यायव्यवस्था के द्वारा अच्छे कर्मों का फल सुख के रुप में और बुरे कर्मों का फल दुःखके रुप में मिलता है। इसीलिए ईश्वर ने मनुष्य को अन्य जीवों की वनिस्पत अधिक बुद्धि दी है, जिससे वह चिन्तन मनन करके यानि अच्छे-बुरे की जांच करके अच्छे कर्म करें और बुरे काम न करे ताकि वह अच्छे काम करके मोक्ष पाने का अधिकारी बन सके। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसमें स्वाभाविक ज्ञान कम और नैमित्तिक ज्ञान अधिक होता है, इसलिए मनुष्य सीखाने से सीखता है। बिना सिखाए मनुष्य पशुवत् ही रह जाता है। सिखाने से उद्देश्य से ही ईश्वर ने मनुष्यों के लिए सृष्टि के आदि में वेद ज्ञान दिया जिसको सुनकर या पढ़कर वह यह जान सके कि अच्छे कर्म क्या है? और बुरे कर्म क्या है? यह जानने के बाद मनुष्य अच्छे काम करता हुआ तथा अपना और दूसरों के जीवन को सुखी व खुशहाल बनाते हुए अन्त में मोक्ष को प्राप्त कर सके। जीव मनुष्य योनि प्राप्त करके ही वेद पढ़ सकता है और उनके अनुसार चल कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा मोक्ष प्राप्त करने का कोई मार्ग नही। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मनुष्य योनि पाकर और वेदानुकूल चलकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अन्त में मोक्ष को प्राप्त करे। बाकी तीन पुरुषार्थ इसी भाँति हैं।

१-धर्म :- धर्म का तात्पर्य है कि गुणों को धारण करना जिनके धारण करने से उसको स्वयं को सुख व लाभ होता हो साथ ही दूसरों को भी सुख व लाभ मिलता हो। जैसे ईमानदारी, सत्य बोलना, किसी को सिखा न देना, निष्पक्ष बात कहना, दया, करूणा, परोपकार आदि। इन गुणों को अपनाने से मनुष्य को स्वयं को लाभ मिलता है तथा उसका जीवन भी सुखी बनता है साथ ही दूसरों का भी हित होता है। इसके विपरीत ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, हिंसा, बेईमानी, झूठ बोलना, किसी को धोखा देना आदि अधर्म हैं। इनको अपनाने से मनुष्य स्वयं दुःखी होता है तथा अन्यों को भी दुःख पहुँचाता है। धर्म मनुष्य के लिए बहुत जरूरी है, इससे उसकी आत्मा पवित्र होती है और दूसरों का उसके ऊपर विश्वास जमता है। आज कल लोग सही धर्म को न समझकर केवल बाहरी चिन्हों तथा आडम्बरों व पाखण्डों को धर्म मानकर धर्म का रुप विकृत कर दिया है। हमारे पौराणिक भाई तो केवल मन्दिर में दिन में दो बार जाकर किसी देवी या देवता के दर्शन मात्र को ही धर्म मान बैठा है। बाकी समय वह कितना भी पाप कर्म करे उसका देवता उसे माफ़ कर देगा और उसे पाप कर्म करने की छूट मिल जायेगी। इसी भाँति हमारे मुस्लिम भाई भी मानते हैं कि दिन में पॉच बार नमाज पढ़ लो और ईद पर तीस दिन रोजे रखलो बाकी फिर वह चाहे जितना भी पाप कर्म करे, अल्लाह उसे क्षमा कर देंगा और मरने के बाद उसे जन्नत (स्वर्ग) में भेज देगा/ इसी प्रकार हमारे ईसाई भाई मानते हैं कि आप एक बार ईसा पर विश्वास ले आओ फिर वह जितने भी पाप कर्म करेगा, ईसा उसको गोड़ (ईश्वर) से सिफारस करके पापों से मुक्त करवा देगा और उसे स्वर्ग में स्थान दिलवा देगा। लोगों ने धर्म को इतना सस्ता बना दिया है जिससे भोले लोग सस्ते धर्म की ओर झुक जाते हैं और अधर्म के कार्यो में लिप्त हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द का मानव मात्र पर यह इतना बड़ा उपकार है कि उन्होंने सच्चे धर्म के स्वरूप को वेदों से जानकर भटके हुए लोगो के सामने रखा जिसमें ईश्वर की सच्ची उपासना सन्दया, यज्ञ व अष्टांग योग है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन को पवित्र बनाकर ही मोक्ष को प्राप्तकर सकता है। इसके अतिरिक्त अन्ध विश्वासों में अपने जीवन को नष्ट करना है।

२-अर्थ-: पुरुषार्थ में अर्थ यानि धन का दूसरा स्थान हैं। वेद कहता है

कि धन चाहे कितना भी कमाओ लेकिन धर्म के साथ कमाना चाहिए। धर्म से कमाया हुआ धन ही अर्थ है, नहीं तो सब अनर्थ है। धर्म से धन कमाने का तात्पर्य है कि सच्चाई, ईमानदारी व परोपकार की भावना व कर्तव्य भाव से धन कमाना चाहिए। आप कोई भी काम करो, चाहे व्यापार हो, चाहे खेती हो, चाहे नोकरी हो या अन्य कोई सेवा कार्य हो। सभी को धर्म व कर्तव्य का ध्यान रखते हुए करना चाहिए। उसमें किसी का भी अहित नही होना चाहिए। धर्म के साथ ही धन कमाना सच्चा पुरुषार्थ है। जो मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाता है।

३-काम:- काम का तात्पर्य विषय-भोगों के साथ-साथ सभी कामनाएँ यानि इच्छाएँ भी धर्म के अनुसार होनी चाहिए। विषय - भोग समय पर केवल अच्छी सुयोग्य सन्तान राष्ट्र को देने के उद्देश्य से करना चाहिए। अच्छी व सुयोग्य सन्तान यदि आप राष्ट्र को देंगे तो राष्ट्र सदैव उन्नति व समृद्धशाली बनता जायेगा और मानवता का भी उद्धार होगा। मनुष्य को अपने शरीर की आवश्यकताएँ कम से कम रखनी चाहिए और परिश्रम अधिक से अधिक करना चाहिए तभी काम को सच्चा पुरुषार्थ कह सकेंगे।

इस प्रकार आप यदि तीनों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम को धर्म की भावना यानि परोपकार की भावना कर्तव्य परायण हो कर इच्छा और कामनाओं में बिना लिप्त त्यागभाव से जीवन में कार्य करोगे तो मोक्ष मिलना निश्चित है। वेद भी हमे इस मन्त्र द्वारा यही शिक्षा देता है। ''तेन त्यक्ततेन भुजिंभा मा गृध: किस्यस्विद्धनम्।

पता- १८० महात्मा गान्धी रोड़,
दो तल्ला, कोलकता-७०००००७
मो. : ९८३०१३५७९४

विचार शक्ति का चमत्कार

(प्रत्येक की वर्तमान स्थिति उसके गुण, कर्म, स्वभाव के कारण होती है)

इस संसार में जैसे गरीब सम्पन्न और अति सम्पन्न हर एक का स्थान महत्वपूर्ण है। हर एक को जीने का अधिकार है। हर व्यक्ति अम्बानी, नरेन्द्र मोदी, बाबा रामदेव या महेन्द्रसिंह धोनी रातों रात बन जाना चाहता है, लेकिन क्या एसा होता है? जब तक हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित शक्तियाँ चलायमान नहीं होती या व्यवहार में नही आती तब तक ऐसी स्थिति नही आ पाती और उसमें भी हर काम के उचित वक्त लगता है। जीवात्मा सुख पाने की निरंतर इच्छा करता रहता है लेकिन विकारों के चंगुल मे फंसकर अधोगति को प्राप्त होता है। जीवात्मा की नीचे की ओर जाने की प्रवृत्ति हमेशा बनी रहती है लेकिन इसे चाहिए कि इस प्रवृत्ति को रोके और हमेशा उपर की ओर जाने का प्रयास करता रहे। प्रयास भी फलिभूत होता है। हमारा कोई उद्देश्य पूरा होने पर हम यह नहीं कह सकते कि अब हमारा जीवन स्थिर हो गया है और अब पाने के लिए कुछ नहीं है। जीवन निरंतर चलता रहता है और कभी थमता नहीं है। हमे केवल कारण को पकड़कर चलना है, फल अपने आप मिलता है। ऐसी कोई स्थिति कभी नहीं आती जो कि हमें अच्छा सोचने से रोक सके। अच्छी सोच हमारी धरोहर है और यह कारण रुप शरीर के रुप में हमेशा आत्मा के साथ रहता है। इसीलिए हमेशा सकारात्मक सोच जीवन को उपर की ओर लेकर जाती रहती है, लेकिन कितनी ऊचांईयां मिलेंगी यह परमात्मा के उपर निर्भर है जिसका हमारे फल के उपर पूरा नियंत्रण है।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
मंत्री, आर्य समाज, वाशी।

आर्य समाज वाशी द्वारा आयोजित वेद प्रचार सप्ताह एवं हिन्दी दिवस समारोह

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष वेद प्रचार सप्ताह एवं हिन्दी दिवस समारोह १० से १३ सितंबर तक मनाया गया। वेद प्रचार में यज्ञ के ब्रह्म के रूप में स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती (अलीगढ़ उत्तर प्रदेश) उपस्थित थे। भजनोपदेशक कुमारी अंजली आर्या (करनाल हरियाणा) के मधुर भजनों ने सभी को मोह लिया। यज्ञ, प्रवचन एवं भजनों का कार्यक्रम प्रात: एवं सायं आयोजित किया गया। दोनों विद्वानों ने ज्ञान की गंगा बहायी व बड़ा सुन्दर अध्यात्मिक वातावरण बनाया।

हिन्दी दिवस कार्यक्रम के अंतर्गत नवी मुम्बई के विद्यालयों के विद्यार्थियों की वाक् प्रतियोगिता दो वर्गो में अ वर्ग (कक्षा ९ व १०) एवं ब वर्ग (कक्षा ६ से ८) तीन चरणों में आयोजित की गई। प्रथम चरण ३० अगस्त को आयोजित किया गया जिसमें ११ विद्यालयों के ६५ विद्यार्थियों ने भाग लिया। द्वितीय चरण ६ सितंबर को व अन्तिम चरण १३ सितम्बर को आयोजित किया गया जिसमें दोनों वर्गों में से प्रथम, द्वितीय व तृतीय के लिए चुनाव कर स्मृति चिन्ह व नकद राशि से पुरस्कृत किया गया। नार्थ पाईट स्कूल कोपर खैरने को तीनों चरणों में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. (श्रीमती) वंदना प्रदीप को हिन्दी में की गई सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में श्री श्रद्धानन्द बाजपेयी (सी.ई.ओ. एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स) उपस्थित रहे व श्री मिठाई लाल सिंह ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। चारों दिनों के कार्यकमों में बड़ी संख्या में आर्य परिवारों ने भाग लिया व यथायोग्य सहयोग दिया जिसके लिए सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

राजकुमार भ. गुप्ता
मंत्री

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा दूरदर्शी मानव निर्माण की योजना क्या थी, क्या हम उस पर चल रहे हैं

पं. उम्मेदसिंह विशारद
मो. ९४११५ १२०१९

महर्षि दयानन्द जी का स्वप्न था, कि बालकों को जन्म से पूर्व और पश्चात् सोलह संस्कारों के भट्टी में डाल देने पर वह २५ वर्ष बाद युग को ही बदल देंगें। क्योंकि पुरानी पीढ़ी का स्थान आज के जन्में बच्चे लेंगे और वे जैसे होंगे वैसा ही युग होगा।

महाभारत युद्ध के बाद भारत वर्ष का इतिहास ही बदल गया था। भारतवासी अपनी प्राचीन वैदिक संस्कार संस्कृति, व सभ्यता को भूल गये थे। परिणाम स्वरूप विश्व गुरु भारत अराजकता एवं और उच्च चरित्र संस्कार हीनता के कारण विदेशियों को गुलाम बन गया था। और मानव जीवन के निर्माण के १६ संस्कार प्राय: लुप्त हो गये थे। यदि कहीं दो तीन संस्कार बने हुए भी थे तो वह अभ्रंश रुप में प्रचलित थे। और वैदिक संस्कार भारत में बीता इतिहास बन गये थे। चतुर अवसरवादी अनार्ष ज्ञान रखने वाले धर्म के ठेकेदारों ने विकृत धर्म और संस्कार व संस्कृति के द्वारा अपना-अपना मत बनाकर दुकानें खोल रखी थी। जन साधारण भारतवासी बुरी तरह से इन धर्म के ठेकेदारों के चंगुल में फंस गये थे।

इतिहास गवाह है जब-जब मानवों ने ईश्वरीय नियम व सृष्टिक्रम व वैदिक संस्कारों की अवहेलना की तब-तब बार वीर मनुष्यता मरती चली गई। आत्म रक्षा, धर्म रक्षा, समाज रक्षा, और राष्ट्रीय रक्षा के आधार वैदिक संस्कार होते हैं। और जब यह ही समाप्त हो गये या विकृत बन गये, तो विदेशियों ने इस गिरावट का लाभ उठाया और विश्व गुरू भारत को गुलाम बनाकर नोंच डाला। इस भीषण विभिशिका से किसी भी धर्म गुरू को कोई चिन्ता नही थी चिता थी तो केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने की।

ईश्वर की कृपा से अठारंवी सदी में युग पुरुष महर्षि दयानन्द जी का जन्म हुआ था यह भी सत्य है कि युग पुरुष संसार के कल्याण के ही लिए जन्म लेते है। यह भी सत्य है कि जब-जब ईश्वरीय धर्म वैदिक धर्म समाप्त होने लगता है तो चारों ओर अनैतिकता का वातावरण पैदा हो जाता है। तब ईश्वरीय व्यवस्था से महापुरूष सीधे मोक्ष से लौटकर अधर्म का नाश करने को जन्म लेते हैं। वह कर्मयुक्त जीव होते हैं, संसार के बन्धनों में नही फंसते हैं। और संसार को सत्य मार्ग दिखाते-दिखाते अपना जीवन बलिदान कर देते हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने भी रण क्षेत्र में उतरकर सर्वप्रथम वेदों के रुढ़ि अर्थो पर प्रहार करके उनको इतिहास परक न मानकर योगिक अर्थ किये। और उन्होंने समझा और उन्होंने समझा था कि सम्पूर्ण भारत में संस्कार हीनता का कारण वेदों के अर्थों का गलत अर्थ करके समाज को दिशाहीन कर दिया है। उन्होंने तत्कालीन तमाम विद्वानों से शास्त्रार्थ किये और वेदों के अर्थों को संसार के सामने रखा। यह एक अदभुत वैचारिक क्रान्ति थी। जमाने के साथ न चलकर जमाने की गर्दन पकड़कर अपने पीछे चलाया। एक नई वैचारिक क्रान्ति का जन्म हुआ।

<u>**संस्कार विधि :**</u> महर्षि दयानन्द ने समाज में चल रहे विकृत संस्कारों को वेदानुकूल बनाने हेतु संस्कार विधि का निर्माण किया। और संस्कार विधि में सोलह संस्कारों को पूर्ण मानव बनाने की योजना तैयार की। उन्होंने समझा संस्कार अपने घर से ही बदले जा सकते हैं उन्होंने संस्कार विधि में संविधान किया कि बालक माता के गर्भ से ही तीन संस्कार होने चाहिए वह थे गर्भ, धान, पुंसवन, तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार। और जन्म होने के पश्चात् जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्ण भेद, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्योष्टि कर्म। ये मानव को पूर्ण मानव बनाते हैं।

उनकी योजना थी कि यदि बालकों को उक्त संस्कारों की भट्टी में तपाया जाए तो युवा होने पर २५ वर्ष की अवस्था में एक नये युग का निर्माण हो सकता है, क्योंकि पुरानी पीढ़ि के स्थान नई पीढ़ी लेती है। यदि समस्त परिवार सोलह संस्कारों को विधिवत करने लगेंगे तो एक आदर्श युग का निर्माण प्रारम्भ हो जायेगा और वैदिक संस्कारों के चलने से तमाम अनार्ष साहित्य मान्यतायें व क्रियायें समाप्त हो जायेंगी।

<u>**सत्यार्थ प्रकाश का निर्माण:**</u> महर्षि दयानन्द जी ने अनार्ष ज्ञान कर्मों को समाप्त करने के लिए कालजयी ग्रन्थ, सत्यार्थ प्रकाश में ग्यारह सम्मुलास पूर्ण रूप से मानव बनाने का निर्देश दिया। सत्यार्थ प्रकाश ने विकृत समाज में एक हलचल मचा दी। कथित धर्म के ठेकेदारों की चूलें हिलाकर रख दी। संसार सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर आश्चर्यचकित रह गया कि अब तक संसार वासियो को कैसे मूर्ख बनाया जा रहा था। सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ ने एक नया इतिहास ही रच दिया।

<u>**आर्यसमाज का गठन:**</u> युग पुरुष दूरदर्शी होते हैं, महर्षि जी ने समझा कि यदि सोलह संस्कारों का चलन नियमित होता रहे और आर्ष विचारों का प्रचार सदैव होता रहे, उसक लिये एक आर्ष संगठन ही

होना चाहिए। उन्होंने कोई भी प्रचलित मत या नया मत न बनाकर आर्य समाज का गठन किया या यों कहें महाभारत के पश्चात, प्राचीन आर्ष संगठन की पुनरावर्ती की। और जब तक संसार में आर्य समाज रहेगा। आर्ष विचारों का प्रकाश पुंज प्रकाशित होता रहेगा। यह भी मानव निर्माण योजना थी।

महर्षि दयानन्द के अनुयाइयों से निवेदन : महर्षि दयानन्द जी ने मानव निर्माण की पूर्ण योजना हम आर्यो के समक्ष रखी। ज्यों-ज्यों आर्य समाज की उमर बढ़ रही है, वैसे-वैसे आर्य समाज के अनुयायी महर्षि के सिद्धान्तों से हटते जा रहे हैं। उन्होंने कल्पना की थी इस योजना से सारा संसार आर्य बन जायेगा, किन्तु हम स्वयं आर्य नही बन पा रहे हैं। हम अपने हृदय पर हाथ रख कर सोचें क्या हम अपने बालकों के पन्द्रह संस्कार कर रहे है। १६वा तो अव्येष्टि कर्म परिवार करता है। आर्यों के परिवार भी पश्चात्य सभ्यता के शिकार होते चले जा रहे। केवल तीन चार संस्कार ही अधिकांश आर्यों के घरों में होते हैं।

आज संन्यासी, वानप्रस्थ प्रतिनिधि सभायें व प्रमुख आर्य अपनी कलह से जूझ रहे हैं और अपनी-अपनी महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करने में संघर्षरत हैं। हम आर्य, आर्य समाज की आत्मा पर आघात कर रहे हैं। यह कार्य संन्यासी वर्ग व नेतृत्व व पुरूषार्थी आर्य अच्छी प्रकार कर सकते हैं। आइये हम आज के आर्य समाज को गति देने के लिए, महर्षि दयानन्द जी के उक्त सिद्धान्तों पर चलेंगे वो निश्चय ही २५ वर्ष बाद सम्पूर्ण भारत आर्य बन जायेगा या अपने विचारों को बदलने पर मजबूत हो जायेगा।

आज के संस्कार

आज भारत की शिक्षा पद्धति का उद्देश्य भौतिक है, शिक्षा से मानव में सत्य व अध्यात्म संस्कार बनता है। आज नैतिक शिक्षा का आधार संसार खो चुका है। जब युवक पढ़-लिखकर उतरता है तो कोई डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, वकील, साइन्टिस्ट आदि। उसमें अपने व्यवसाय के प्रति आदर्श सत्यपथ के संस्कार न होने से वह अपने-अपने पदों में भ्रष्टाचार करना शुरू कर देते हैं, और सारा सामाजिक वातावरण दूषित हो जाता है। और मानव की जगह दानवता पनपने लगती है। शिक्षा का आधार व्यवसायिक हो गया है। और ईश्वरीय वैदिक संस्कार न होकर अपने-अपने कथित मजहबों में बालक को जन्म से उसी मत के संस्कार दिये जाते हैं और उसका जीवन उसी में बीत जाता है। परिणाम स्वरूप आपसी विवादों के कारण सारा संसार बारूद की ढ़ेर पर बैठा है।

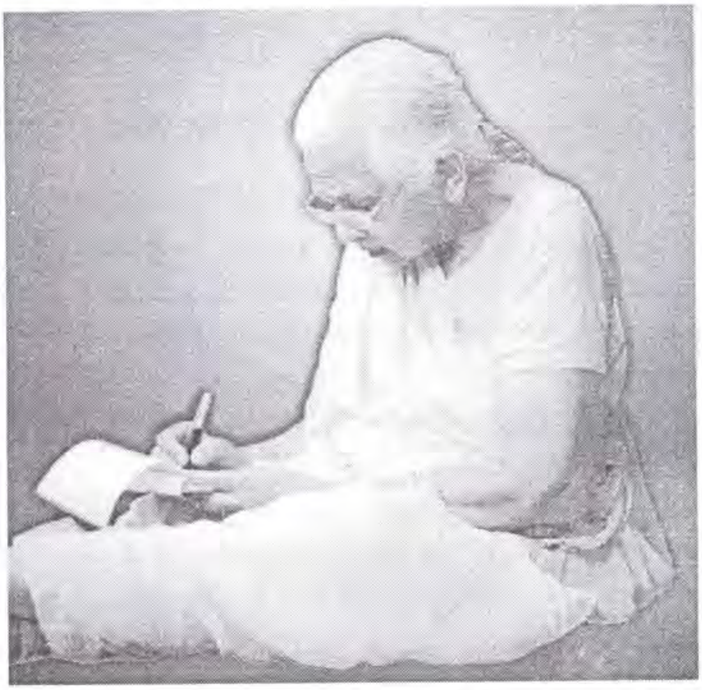

माता सुमित्रा देवी आर्या दिवंगत

'प्रिय परिवार' की स्नेहमयी माता-श्रीमती सुमित्रा देवी आर्या, सिद्धांत रत्न (84 वर्ष), धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री. देवप्रिय आर्य सिद्धांत शास्त्री, सोनीपत, का निधन दिनांक 30 अगस्त, 2015 को हुआ। उनका अंत्येष्टि संस्कार गुडगाँव में किया गया तथा प्रार्थना सभा 02 सितंबर, 2015 को आर्य समाज सेक्टर 14, सोनीपती में लगभग 400 लोगों की उपस्थिति में संपन्न हुई। आप प्रतिष्ठित समाज सेवी लाला परशुराम 'आर्य सेवक' झुज्जर (हरियाणा) की सुपुत्री व भिवानी (हरियाणा) के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी सर्वमान्य पंडित फूलचन्द्र शर्मा 'निडर' की पुत्रवधू थीं। आप अत्यंत सरल, स्वाध्यायशील, पूर्ण रूप से वैदिक धर्म को समर्पित आर्य महिला थीं। आप अपने पीछे 6 पुत्र एवं 3 पुत्रियों का विशाल परिवार छोड़ गई हैं जो भारत के कई स्थानों पर वैदिक धर्म की परंपरा को आगे बढ़ा रहा है। मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व ही माता जी का 85 वां जन्मदिन परिवार के सदस्यों ने मिलजुल कर मनाया था। इस अवसर पर प्रिय परिवार की ओर से एक ट्रस्ट 'प्रिय परिवार फाउंडेशन' की स्थापना की गई। यह ट्रस्ट वैदिक धर्म के प्रचारार्थ कई माध्यमों से काम करेगा। इसी अवसर पर माता जी द्वारा संग्रहीत भजनों की पुस्तिका 'मेरे प्रिय गीत' का विमोचन भी माता जी के हाथों किया गया। यह पुस्तिका प्रार्थना सभा के दिन सभी उपस्थित व्यक्तियों को व संबंधित आर्य संस्थाओं में प्रेरणा के रूप में वितरित की गई।

प्रिय परिवार
ऋतप्रिय आर्य
9824147749

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्य समाज

(नवनियुक्त राज्यपाल आचार्य डॉ. देवव्रत जी के सन्दर्भ में)

मैं ८ अगस्त को रात्रि के ९ बजे चण्डीगढ़ की सुन्दर गलियों में घूम रहा था कि अकस्मात् मुझे मेरे दोस्त सुरेन्द्र का फोन आया कि राज्यपाल के रुप में डॉ. देवव्रत जी की नियुक्ति हो रही है इस प्रकार की चर्चा है, आप पता करो कि सच्चाई क्या है? मैंने यह सुनकर मन ही मन ये भाव व्यक्त किया कि ये सही सूचना हो उसी समय मैंने तुरन्त डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार जी को फोन किया तो उन्होंने फोन उठाते ही मुझे बधाई दी और कहा कि डॉ. देवव्रत जी राज्यपाल के रुप में नियुक्त हुए हैं, डॉ. राजेन्द्र जी बहुत व्यस्त थे इसलिए और अधिक बातचीत नहीं हुई। मैंने उस समय बहुत बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की और लगभग ५० आर्य समाज के लोगों को तत्क्षण सूचना दी। क्योंकि खुशी को प्रकट करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका यही है कि उसकी खुशी, उसकी सूचना अपनों को दी जाए और लगभग उन सब आर्य समाज के लोगों को भी डॉ. देवव्रत जी के राज्यपाल रुप में बहुत अधिक खुशी हो रही थी। क्योंकि इस बात को हम और आप लोग जानते हैं कि इतने बड़े पद पर किसी कट्टर आर्य समाजी व्यक्ति को अवसर लम्बे समय के बाद मिला है यह पल हमारे लिए गौरव का पल है क्योंकि जो बी.जे.पी. बिना संघ के अपनी पूँछ भी नहीं हिलाती थी उसी पार्टी में आर्य समाज के व्यक्ति को पद मिलना वास्तव में बड़ी बात है।

जब से इस देश के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी बने हैं तब से संघ के नेतृत्व में कमी आयी है। यदि विगत मोदी के कार्यकाल को देखा जाए तो शायद कट्टर संघ की विचारधारा वाले व्यक्तियों की संख्या कम है। उसका तो एक ही मतलब है कि कहीं न कहीं मोदी संघ से परेशान है। आर्य समाज और संघ में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है परन्तु ये संघ वाले अपने आपको दयानन्द से विशेष दूरी रखते हैं। आर्य समाज के मंच से तो विवेकानन्द का नाम तो सुनने को मिलता है और मिलना भी चाहिए क्योंकि तत्कालीन समय में विवेकानन्द ने भी विदेशों में जाकर भारत की ध्वजा लहराई थी। परन्तु हमारा दयानन्द तो विवेकानन्द से बढ़कर है जिस आर्य समाज और दयानन्द के बिना शिक्षा और स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास नहीं लिखा जा सकता। उस संस्था का संघ द्वारा नकारना कहां तक उचित है अस्तु। मेरा तात्पर्य डॉ. देवव्रत जी को राज्यपाल बनाने के विचार से है। मैं वापस १० तारीख को गुरुकुल आया और आते ही विशेष पत्रकार वार्ता का आयोजन किया, प्रधानमन्त्री मोदी को धन्यवाद पत्र लिखा, सोशल मीडिया द्वारा भी विशेष प्रचार-प्रसार किया गया। न केवल मैंने किया अपितु अन्य आर्य समाजों को भी पत्रकार वार्ता करने का, बड़े-बड़े बैनर लगाने का, धन्यवाद पत्र लिखने, का भी निर्देश व निवेदन किया। क्योंकि अगर इस समय का आर्य समाज लाभ नहीं उठा पाया तो हमें केवल निराशा ही हाथ लगेगी। क्योंकि इस प्रकार के कार्य करने से सरकार तक उस व्यक्ति के समर्थन में कितने लोग है और उस समुदाय की कितनी संख्या है इत्यादि विषयों की जानकारी सरकार तक पहुँचती है जिससे उस समाज को लाभ मिलता है जितनी जिस व्यक्ति के समर्थन में प्रतिक्रिया होगी उतना ही सर्वकार से लाभ मिलेगा। क्योंकि बात सारी वोटो (संख्या) की है परन्तु बड़े दुखी मन से कहना पड रहा है कि डॉ. देवव्रत समर्थन में प्रतिक्रिया बहुत कम रही। खुश सब लोग है परन्तु उसके ऊपर थोड़ा सा परिश्रम करने को हम तैयार नहीं हैं। मैंने पानीपत, चण्डीगढ़, पंजाब के लगभग सभी राज्यों का दौरा किया। परन्तु प्रतिक्रिया शून्य मिली। हाँ, कुछ हद तक सोशल मीडिया पर जरूर लोगों ने प्रतिक्रिया दी। परन्तु ये पर्याप्त नहीं है। आचार्य देवव्रत जी से किसी के व्यक्तिगत, मनोभेद, मदभेद हो सकते हैं परन्तु आर्य समाज और दयानन्द से नहीं और डॉ. देवव्रत जी आर्य समाज के पुरोधा एवं नेता है। और ये उपलब्धि आर्य समाज की है हमारे पास डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार, डॉ. धर्मवीर (परोपकारिणी सभा अजमेर) जैसे प्रबुद्ध विद्वानों की भरमार है और ये वो लोग हैं जो हर क्षेत्र में हर विषय में किसी को टक्कर देने के लिए तैयार रहते हैं। मैं तो चाहता हूँ भाजपा में एक-गुट आर्य समाज का हो जाए। जैसे स्वामी सुमेधानन्द, सत्यपाल जी, कैप्टन अभिमन्यु आदि एक बड़ा समूह आर्य समाज का भाजपा में बन सकता है और ये एक शुरुआत है। यदि आर्य सामज को नई राजनीतिक पार्टी शुरू करता है तो शायद सफलता पाना किञ्चिद् दुष्कर है। परन्तु इस प्रकार के अवसरों का लाभ उठाकर अपनी संख्या व ताकत सरकार को दिखाकर आर्य समाज का नेतृत्व भाजपा में बढ़ सकता है। मेरा तात्पर्य यही है कि शीघ्र अति शीघ्र डॉ. देवव्रत जी के समर्थन में नगरों में बैनर, पत्रकार वार्ता, सरकार को आभार पत्र आदि अनेक माध्यमों से आर्य समाज की संख्या व ताकत का एहसास सरकार को कराए। यह आर्य समाज की शुरूआत है। आशय को ही समझे अन्यथा अर्थ न निकालें। क्योंकि अब आर्य समाज का परिवर्तन का समय आ चुका है। हम लोगों के परिश्रम से ही आर्य समाज और दयानन्द का प्रचार होगा। आओ संगठन सूक्त के आदेश का पालन करते हुए मिलकर आर्यत्व का प्रचार करें। अत: हम अपनी राजनीति में भूमिका निभायें क्योंकि यह एक अच्छा विकल्प है। अस्तु

जयतु संस्कृतं, जयतु दयानन्दः, जयतु भारतम्।

डॉ. उदयन आर्य
प्राचार्य एवं आचार्य
(श्री गुरू विरजानन्द महाविद्यालय गुरुकुल करतारपुर)

भगवान और ईश्वर शब्द की परिभाषा

पं. उम्मेदसिंह विशारद
मो. ९४११५ १२०१९

प्राचीन इतिहास अवलोकन से ज्ञान होता है कि महाभारत काल तक भारत वर्ष में एक निराकार ईश्वर की प्रार्थना व स्तुति होती थी, और यज्ञ प्रधान काल था। महाभारत युद्ध के बाद वैदिक विद्वान, आचार्यों की क्षति होने के कारण अज्ञान व अन्धविश्वासों का जाल फैलने लगा। जनसाधरण वैदिक धर्म व सिद्धान्तों को भूलने लगे। और अवसर वादी लोगों ने अपने- अपने मतों की दुकानें खोल दी। जनसाधरण में उच्च संस्कारों व राष्ट्र भक्ति की कमी आने लगी। और ईश्वर के नाम से धार्मिक अन्धविश्वास, रुढ़ी सामाजिक परम्परायें बुरी तरह से फैलने लगी। चारों ओर अराजकता व अमानुष्य के संस्कार फैलने लगे। मन्दिरों में महापुरूषों की मूर्तियां लगाकर महापुरूष भगवानों को ईश्वर मानकर पूजने लगे। बस यहीं से संसार में तथाकथित भगवानों की बाढ़ आने लगी, और जनसाधारण सत्य ईश्वर से विमुख होने लगे। फलस्वरूप आज सारा संसार अराजकता, उग्रवाद, अनाचार, द्वेष के बारूद के ढ़ेर पर बैठा है।

भगवान की परिभाषा:

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रय:।
ज्ञाने वेराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणा:।।

१. अर्थात्: सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री ज्ञान, बेराग्य इन छ: का नाम भग है भगवान का पहला गुण सम्पूर्ण ऐश्वर्य : जिसके पास जितने अधिक भग है, वह भगवान कहलाता है, किन्तु जिस के पास ऐश्वर्यों का अभाव होता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को पुरुषार्थ से प्राप्त करता है, जैसे श्रीराम व श्रीकृष्ण के पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य थे। किन्तु जो संसार में जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है उसी को उक्त भग प्राप्त करने पड़ते है। इसलिए उनको भगवान कहते हैं। वह ईश्वर नही हो सकते हैं।

ईश्वर- ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव और स्वरूप सत्य है जो केवल चैतन्य वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय, सशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक अनादि, आदि सत्य गुण वाला हैं जिसका स्वभाव, अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है। जिसका कार्य जगत की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना है, सब जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाता है। जो सदैव ऐश्वर्ययुक्त है, और जगत के प्राणियों को ऐश्वर्य देने वाला है और स्वयं ऐश्वर्य ग्रहण नही करता, अपितु करता है उसे ईश्वर कहते है। जन्म नही लेता अपितु जन्म देता है।

<u>**२. भगवान शब्द का दूसरा गुण धर्म:**</u> धर्म ऐव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:- जो सत्यवादी मनुष्य ईश्वरीय गुण कर्म स्वभाव और वेदों की शिक्षा के आधार पर धर्ममानना, और पदार्थ के गुण कर्मानुसार मानना व प्राणी मात्र के साथ अनुकूल व्यवहार करना, तथा जीवन के अन्दर सत्य आचरण, सत्य पुरषार्थ, सत्य प्रभु भक्ति व सृष्टि कर्मानुसार व्यवहार और सत्य असत्य, धर्म अधर्म, पाप पुण्य व कृत्य अकृत्य, को सत्य की कसौटी पर परख कर चलता हैं तथा जैसे परमात्मा द्वारा प्राणी मात्र पर उपकार किये जा रहे हैं वैसे ही प्राणी मात्र के साथ करना सदैव सत्य मार्ग पर चलना। यह भगवान का दूसरा भग है जो केवल मनुष्य रूपी उत्तम पुरूष में ही घट सकते हैं।

<u>**ईश्वर:**</u> ईश्वर सारे संसार का रचियता है तथा ईश्वर ने प्रत्येक पदार्थ जड़ व चैतन्य में गुण विशेष दिये हैं सूर्य, अग्नि, वायु, जल, अन्न, फल, वनस्पति और मानव की रचना, आदि क्रियाओं का गुण धर्म एक जैसे रहते हैं इनके गुण धर्म में कभी परिवर्तन नही होता। अपितु अपरिवर्तन शील गुण है, यही ईश्वरीय धर्म कहलाता है। जो प्राणी मात्र के कल्याण के लिए है। इसलिए ईश्वर कहाता है जो मनुष्य रूपी भगवान नही कर सकते है अपितु ईश्वरीय गुणों के सहारे जीते हैं।

<u>**भगवान का तीसरा भग यश है:**</u> यश और अपयश देहधारी मनुष्यों में ही घट सकते हैं संसार में जिस महापुरुष ने अपने सात्विक कर्मों द्वारा, वेदानुकूल, और ईश्वरीय गुण कर्म धर्मानुसार जन कल्याण किये हो उसका यश चारों ओर फैलता है। यह मनुष्यों में ही घट सकता है। इसलिए भगवान रुपी मनुष्य का तीसरा भग है।

<u>**ईश्वर:**</u> ईश्वर निर्विकार है और सर्व शक्तिमान है सर्वान्तर्यामी है, सृष्टि रचियता है। अत: ईश्वर यश और अपयश से ऊपर है। ईश्वर सदैव ऋत यश में रहता है।

भगवान का चौथा भग/श्री है:- महापुरुष संसार में जन्म लेकर जितना-जितना, वेदानुकूल, सृष्टिक्रमानुसार सत्य धर्म, सत्य कर्म, सत्य ईश्वरभक्ति और जनता को सन्मार्ग दिखाना, परोपकार आदि गुणों से उसे संस्कार में ''श्री'' प्राप्त होती है अर्थात्, श्रेष्ठता प्राप्त होती है। यह गुण केवल मनुष्य पर ही घट सकते हैं जिस पर यह गुण आ जाते हैं उसे भगवान कहते हैं।

ईश्वर:- ईश्वर निर्विकार है और शक्तिमान है और सर्वाधार है, सर्वगुण सम्पन्न है और सर्वोत्तम है सारे ब्रह्माण्ड का रचियता है, कालतीत है, और श्री और निन्दा के गुणों के ऊपर है सदैव कल्याणकारी होने से सदैव ऋत ''श्री'' ही है इसलिए उसे ईश्वर कहते हैं।

<u>**भगवान का पाँचवा गुण ज्ञान है:**</u> मानव जन्म होते ही अज्ञानी रहता है और विद्या अध्ययन से ही ज्ञान प्राप्त करता है और संसार में अपने विवेक से, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान प्राप्त करता है और अपने ऊँचे ज्ञान से संसार के प्राणियों का अज्ञान मिटाना है उसे भगवान करते हैं।

<u>**ईश्वर:**</u> ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है जो सत्य विद्या और पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है और सदैव, भूत, भविष्य, व वर्तमान से ऊपर रहता है जो सर्वान्तर्यामी है उसे ईश्वर कहते हैं, जो मनुष्य रूपी भगवान में नही घट सकते हैं।

भगवान का छटा गुण वैराग्य है:- मनुष्य रूपी महापुरूष संसार में जन्म तो लेते हैं किन्तु कर्म मुक्त अर्थात् कर्म बन्धन मोह माया में नही फंसते। सदैव त्याग और परोपकार की भावना से कार्य करते हैं। संसार के विषयों से उपराम रहते हैं। जीवन और मृत्यु के रहस्य को समाप्त कर रोग मुक्त रहते हैं। इसलिए संसार उन्हें भगवान कहते हैं।

ईश्वर:- ईश्वर निर्विकार और अनादि है तथा विकार रहित है सूक्ष्म से सूक्ष्म है। राग और बैराग्य से रहित है। प्राणी मात्र की आत्मा में संसार चक्र चलाने के लिए राग व बैराग्य उत्पन्न करने वाला है इसलिए उसे ईश्वर कहते हैं।

ध्यानाकर्षण

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कहीं भी एक शब्द भगवान नही लिखा है अपितु ईश्वर व परमात्मा तो जगह-जगह है तथा सम्पूर्ण आर्ष ग्रन्थों में भी ईश्वर व परमात्मा शब्द ही लिखा है।

आर्य उपदेशकों से निवेदन

प्राय: जनसाधारण में प्रचलित ईश्वर के लिए भगवान शब्द का प्रयोग आर्य उपदेशक भी करते रहते है। जबकि सम्पूर्ण वेदों में और वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थों में कहीं पर भी ईश्वर के लिए भगवान नही लिखा है। अत: हमें बड़ी सावधानी से उपदेश करते समय ईश्वर, या परमात्मा शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए करना चाहिए। और महापुरुषों के लिए भगवान शब्द का प्रयोग करना उचित है। इसलिए संसार, राम कृष्ण, हनुमान या अन्य देवताओं की तो जय बोलता है किन्तु ईश्वर की जय कोई भी नही कहता है क्योंकि ईश्वर जय विजय से ऊपर है और सदैव ऋत सत्य है।

पता- गढ़ निवास मोहकमपुर,
देहरादून उत्तराखण्ड।

''स्वामी दयानन्द की दृष्टि में यज्ञ''

''जब अग्नि में सुगन्धित पदार्थों का हवन होता है, तभी यह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके तथा शरीर और ओषधि आदि पदार्थों की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है। उन शुद्ध पदार्थों के भोग से प्राणियों के विद्या, ज्ञान और बल की वृद्धि भी होती है।''

''जो यज्ञ के धूम से शोधे हुए पवन हैं, वे अच्छे राज्य के कराने वाले होकर रोग आदि दोषों का नाश करते हैं और जो अशुद्ध अर्थात् दुर्गन्ध आदि दोषों से भरे हुए हैं वे सुखों का नाश करते हैं। इससे मनुष्यों को चाहिए कि अग्नि में होम द्वारा वायु की शुद्धि से अनेक प्रकार के सुखों को सिद्ध करें।''

''मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञविधि से सब पदार्थों का अच्छे प्रकार शोधन करके, सबका सेवन कर और रोगों का निवारण करके सदैव सुखी रहें।''

''यदि यजमान और यज्ञ करने वाले विद्वान् हों और सुशोधित द्रव्यों को अग्नि में होमें, तो क्या-क्या सुख प्राप्त न हो!''

''मनुष्यों को चाहिए कि वे आप्त विद्वानों के संग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करने वाले यज्ञ का विस्तार करें।''

''जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सबकी शुद्धि, बल, पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के लिए समर्थ होते हैं। इससे सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिए।''

''मनुष्य अग्नि में जो आहुति देते हैं, वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य से आकर्षित जल को शुद्ध करती है। फिर वहाँ से वह जल पृथ्वी पर आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिए, जिससे उसका फल-ज्ञान होने पर नित्य श्रद्धा उत्पन्न हो।''

''जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं, उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्यों न करना चाहिए?''

''जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं, वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं, यह जानना चाहिए।''

''होम-नामक यज्ञ वह है, जिसमें मांस, क्षार, अम्ल, तिक्त आदि गुणों से रहित, किन्तु सुगन्धि, पुष्ठ, मिष्ट, रोगनाशक आदि गुणों से युक्त हवि हो!''

''जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलू, कमेरु, रतालु, शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्य और दीर्घायु वाले होते हैं।''

''मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् हवन कर, पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा, पुष्प, और फलादिकों में प्रवेश कराके सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्य की सिद्धि करें।''

''मनुष्यों को चाहिए कि जीवनपर्यंत शरीर, प्राण, अन्त:करण, दशों इन्द्रियाँ और जो सबसे उत्तम सामग्री हो उसको यज्ञ के लिए समर्पित करें, जिससे पापरहित कृतकृत्य होकर परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें।''

''हे मनुष्यों! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो। प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं, न होम के योग्य हैं। जो ऐसा जानकर सुगन्ध्यादि द्रव्यों को सुसंकृत करके अग्नि में होम करते हैं, उनके वे द्रव्य वायु और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा द्वारा वहाँ से लौटकर औषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रमश: प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं। इस यज्ञ-कर्म के करने वाले पुण्य के महत्व से परमात्मा को प्राप्त होकर महिमान्वित होते हैं।''

''मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ सदैव करना चाहिए जो पूर्ण श्री, संपूर्ण आयु, अन्नादि पदार्थ, रोगनाश और सब सुखों का विस्तार करता है। वह किसी को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।''

-साभार-'यज्ञ-थैरेपी' संदीप आर्य

तीन लोक

पं. चमूपति एम. ए.

यही लोक प्रलय का प्रतीक्षा-स्थल है और यही स्वर्गलोक है।

पाठक कहीं इस भ्रम में न रहें कि मौलाना शतश: वेदार्थ को अशुद्ध कहने पर तुले बैठे हैं, अथवा हमें मौलाना की हर व्याख्या को गलत कहने की सनक है। मौलाना ने कहीं-कहीं बड़े पते की बात भी कही है, जैसे लोक शब्द का अर्थ किया है आलम (स्थान)। परिभाषा एवं व्युत्पत्ति दोनों प्रकार से यह अर्थ उपयुक्त है। लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाये, जो जाना जाये'। आलम शब्द के अरबी भाषा में भी कोशगत यही अर्थ हैं। मौलाना लिखते हैं- ''वेदों में लोक शब्द प्राय:स्थान और भकाम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।'' (पृष्ठ८) 'लोक' सचमुच इन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु शब्द 'स्थान' तथा 'मक़ाम' भी तो अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे कहते हैं- ''आश्चर्य का मकाम है। प्रसन्नता का मक़ाम है।'' गालिब कहते हैं, शुक्र की जगह कि शिकायत नहीं मुझे', यहाँ मकाम तथा जगह 'अवसर' के अर्थ में आते हैं, यहाँ किसी स्थानविशेष से अभिप्राय नहीं, अपितु कहनेवाले की अवस्थाविशेष की ओर संकेत है। आलम शब्द पर ही जरा ध्यान दें- आलमे-खयाल में (कल्पना लोक में), आलमे-बेदारी (जाग्रतावस्था), आलमे-तिफ़ली (शैशव काल)। यहाँ आलम शब्द व्यक्ति की बौद्धिक अथवा शारीरिक अवस्था का द्योतक है। यही परिस्थिति 'लोक' शब्द की है। यथा, विवाह संस्कार में मन्त्र पढ़ा जाता है- यह युवति मायके से पति-लोक को जा रही है'। इसका अभिप्राय यह है कि अब यह कन्या गृहस्थ-जीवन को प्रारम्भ करने लगी है। पतिलोक यदि कोई स्थान है, तो वह है पति का घर। वैसे गृहस्थ-जीवन अपने में एक नया लोक है, जिसमें युवति प्रविष्ट होने लगी है। उसका जीवन नया हो जावेगा, परन्तु रहेगी वह इसी धरती पर ही। वेदमन्त्रों में वधू से कहा जाता है-

''तुझे स्वस्थावस्था में, यज्ञ के घर, पुण्यकर्मों के लोक में पति के साथ प्रविष्ट करता हूँ।''

पति कहता है-

''ओ प्रकाश-रश्मि ! अमर लोक में प्रविष्ट हो, पति के लिए विवाह को सुखद बना !''

यहाँ गृहस्थाश्रम को अमरता का लोक, अर्थात् जीवन-दायक लोक कहा है। कितनी सार्थक भाषा है! गृहस्थाश्रम अमरता का स्रोत तो है ही। यही नाम स्वर्ग का भी है।

यह संक्षिप्त व्याख्या आपके सम्मुख रहे, तो आप तीन या सात लोकों की कल्पना ही नहीं, सैकड़ों लोकों की कल्पना कर डालें, और सैकड़ों स्थान अथवा अवस्थाएँ कहते जायें, यह सब हमें स्वीकार है। भू:, भुवः, महः, जनः, तपः, सत्यम् ये सब लोक ही हैं; हम सन्ध्या में इन्हीं का ध्यान करते हैं। ईश्वर की जिस महत्ता पर विचार किया जावेगा, ध्यान करनेवाले के मन पर एक नई अवस्था छा जावेगी, और वह स्वयं को एक नये लोक में अनुभव करेगा।

प्रश्न ११ - तैतिरमा (तैतिरमा (दैत्तिरीय) उपनिषद् (मौलाना ने अशुद्ध लिखा है) का जो प्रमाण हमने दिया है, उसमें सात आलमों का वर्णन किया गया है। आर्यसमाज उनको क्यों नही मानता? और जब स्वयं स्वामी दयानन्द जी ने, उसे सत्यार्थप्रकाश (प्रथम) में स्वीकार किया था, तो फिर दूसरी बार छपनेवाले सत्यार्थप्रकाश से उसे निकाल क्यों दिया?

उत्तर- तैत्तिरीयोपनिषद् में सात आलमों का वर्णन है ही नहीं, और न ही आपने प्रमाण लिखा है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण को स्वयं ऋषि दयानन्द ने रद्द कर दिया था, क्योंकि उसमें लिखनेवालों तथा छापनेवालों ने मिलावट कर डाली थी, अत: आपके प्रश्न पर विचार तब किया जावेगा जब आपकी लिखी भाषा तैत्तिरीयोपनिषद् में मिल जायेगी।

लोक शब्द की व्याख्या में मौलाना लिखते हैं- ''वेदाध्ययन से ज्ञात होता है कि यह धरती, मध्य-लोक, तथा आकाश, तीन लोक हैं, और तीनों में प्रजा हैं, और वह प्रजा भी मनुष्य है। इस धरती पर हम जीवन व्यतीत करते हैं, मृत्यु के पश्चात् जीव ख़ला (मध्य-स्थान अथवा अन्तरिक्ष) में जायेंगे, जिसे पितृलोक कहा जाता है। इसके पश्चात् आसमान (आकाश) पर पुरा कर्मफल प्राप्त होगा, जहाँ पुण्यकर्मों का फल मिलता है, उसे स्वर्ग कहते हैं।''

यह भाषा मौलाना ने अगले अध्यायों की भूमिका-रूप में लिखी है। अपने विचारों के अनुमोदन में उन्होंने जो प्रमाण दिये हैं, उन पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। इस्लाम में नरक तथा स्वर्ग के अतिरिक्त आलमे-बरज़ख माना गया है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य कब्र में लेट गया। वहाँ मुनकिर तथा नकीर (दो फ़रिश्ते) से प्रश्न-उत्तर हुए। प्रलय-काल तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् नरक अथवा स्वर्ग जो भाग्य में हुआ, उसे प्राप्त किया। मौलाना यह दृष्टिकोण वेदों में खोजने निकले हैं। आपने अभी तक अन्तरिक्ष को खला अथवा सूर्य और धरती के मध्य का भाग स्वीकार किया था (पृष्ठ ८), अब उसे आलमे-बरजख प्रलयकाल का प्रतीक्षा-स्थल) कहने लगे हैं। प्रश्न होता है ऐसा किसलिये? शायद इसलिये कि वहाँ मनुष्य बसते हैं। परन्तु हमें आश्चर्य है कि क्या इस समय सूर्य तथा धरती के मध्य-भाग में मनुष्य नहीं बसते? विमानों की बात जाने दें, वैसे साधारण-अवस्था में मनुष्य धरती में तो नहीं छुप जाता; उसका सारा शरीर धरती तथा सूर्य के मध्य-भाग में ही रहता है; फिर वह मृत आत्माओं का स्थान कैसे बन गया? रही स्व:बात पितृ-लोक की, सो जैसे 'पतिलोक' पति के घर को कहते हैं, वैसे ही 'पितलोक' माता-पिता के अथवा बाप-दादा के घर को कहते हैं। आलमे-पिदरी अथवा पिता बनने की अवस्था भी पितृलोक है। लोक का अर्थ है अवस्था और पितृ का अर्थ पिदरी (फ़ारसी) अर्थात् पिता का; इसे गृहस्थाश्रम का नाम भी दे सकते हैं। एक प्रकार से वानप्रस्थाश्रम भी पितलोक है। मृत्यु के पश्चात् जीव नया स्थान चाहता है, वह माता-पिता की खोज करता है। किसी पितुलोक में उसे स्थान मिलना चाहिये। पितुलोक का एक नाम अन्तरिक्ष भी है। अन्तरिक्ष का अर्थ है अन्दर का, भीतर का स्थान। यह परिभाषा जननी के उदर पर भी लागू हो सकती है, जहाँ जिन जीवों की मुक्ति नहीं हो सकी, वे प्रविष्ट होते हैं। दूसरी ओर गृहस्थ दादा बनकर वृद्धावस्था को ज्ञान-ध्यान में लगाने के लिए घर से विरक्त हो जाता है; यह वृद्धावस्था उसका पितुलोक है। पितर का अर्थ है बड़ा, पूज्य;

पितुलोक का अर्थ है बड़ों को लोक, और अन्तरिक्ष का अर्थ जैसा हम इसे पूर्व कह चुके हैं, भीतर का स्थान होता है। (वृद्घावस्था में) ध्यानी लोग बाह्य जगत् से विरक्त होकर एकान्त में अपने अन्तर-लोक में विहार करते है; यह उनका पितुलेक है। द्यौ का अर्थ है प्रकाश। वैज्ञानिक आज इस तथ्य को स्वीकार कर चुके हैं कि नक्षत्रों में आबादी है, अत: ऐसे स्थानों पर मनुष्यों का निवास इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार मृत्यु के पश्चात् होता है, ऐसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है। और फिर प्रकाश केवल भौतिक नहीं होता, बौद्धिक तथा आत्मिक भी होता है; अत: जहाँ प्रसन्नता है, ज्ञान-विज्ञान है, आत्मिक आनन्द है, वह द्युलोक है, वह स्वर्गलोक है। वैदिक धर्म के ये कुछ दृष्टिकोण हमने भूमिका रूप में उपस्थित किये हैं। यदि हम किसी मत के मन्तव्यों को समझकर उसके सम्बन्ध में आलोचना के लिए लेकनी उठायें, तो जनता को लाभ होगा। निस्सन्देह इन सब लोकों में आबादी है, (ये वसु हैं)। हम तो मरे हुओं में और जीते हुओं में अन्तर नहीं करते, क्योंकि मनुष्य मरकर फिर जी उठता है। वह हर अवस्था में पृथिवी, आकाश, सूर्य अन्तरिक्ष तथा किसी प्रकाशलोक में, कहीं भी रह सकता है। यह संसार ही आलमे-बरज़ख (प्रलय का प्रतीक्षा-स्थल) है और यही स्वर्ग-स्थान। आप व्यर्थ में दूर की कौड़ी लाने को भाग-दौड़ क्यों करते हैं? और यदि आपका यह मन्तव्य है कि स्वर्ग कोई ऐसा स्थानविशेष है जहाँ जीव शरीर को छोड़ने के पश्चात् केवल कर्मफल ही प्राप्त करता है और नये कर्म नहीं करता, तो इसके लिए प्रमाण चाहिये। आपने जो **'सुकृतस्य लोक:'** का वर्णन किया है, यह तो आपके मन्तव्य के विरुद्ध जाता है। **सुकृतस्य लोक** का अर्थ है 'शुभकर्मों का लोक' और यह स्वर्ग का पर्यायवाची है, अर्थात् जहाँ शुभ कर्म किये जावेंगे वहाँ स्वर्ग होगा। फल तो पूर्वकृत कर्मों का भी और अब किये जा रहे कर्मो का भी हर समय मिल रहा है। पुण्यकर्म करने से पुण्यात्माएँ जो तत्काल आत्मिक आनन्द अनुभव करती हैं, वह सहस्त्र स्वर्ग-सुख से भी बढ़कर है। वस्तुत: कर्म-क्षेत्र और फल-क्षेत्र एक ही हैं, ताने-बाने के समान ओत-प्रोत हैं, अत:यही आलमे-बरज़ख है और यही लोक स्वर्ग लोक है।

प्रश्न १२- जब लोक के अर्थ कोश, वेदों की उक्तियों, शास्त्र तथा पश्चिमी विद्वानों की खोज के अनुसार एक 'स्थान' अथवा 'संसार' का एक भाग है तो आर्यसमाज स्वर्गलोक को एक स्थानविशेष क्यों नहीं स्वीकार करता?

उत्तर- आर्यसमाज मानता है, परन्तु 'लोक' शब्द के अर्थ आप वही स्वीकार कर लें, जो हमने ऊपर दिये हैं, तब लोक किसी स्थान विशेष की सीमा में न रहकर, अवस्था या काल इत्यादि में प्रयुक्त हो सकेगा। एक संकीर्ण घेरे से निकलकर वह विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होनेवाला शब्द बन जावेगा, जो वस्तुत: उसका अर्थ है। संक्षेप में हम कहें तो स्वर्गलोक 'सुखविशेष की अवस्था अथवा 'प्रकाश की अवस्था' का नाम है। इसे आप चाहें तो सुख-स्थान कह लें अथवा सुख की अवस्था कह लें या सुख का काल कह लें, वह सब स्वर्गलोक है।

यदि मौलाना के कथनानुसार लोक का अर्थ केवल 'स्थान' ही मान ले तो स्वर्ग का अर्थ होता सुख होगा वहाँ स्वर्ग माना जावेगा। इस शब्द को किसी स्थानविशेष में सीमित करके, इसे सीमित अर्थवाला सिद्ध करना तो कोई तर्क नहीं।

आर्य समाज सान्ताक्रुज का ७२ वां स्थापना दिवस एवं वरिष्ठ नागरिक सम्मान समारोह

योगेश आर्य द्वारा अपने स्व. दादा - दादी एवं संजय कुमार द्वारा अपने स्व. पिता की पुण्य स्मृति में **वरिष्ठ नागरिक सम्मान समारोह** दिनांक ११.१०.१५ को आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के भव्य सत्संग सभागार में आयोजित किया। प्रातः ०८ बजे से ०९ बजे तक बृहद् यज्ञ पं. विनोद कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। जिसमें सभी उपस्थित सदस्यों नें श्रद्धापूर्वक आहुतियां चढ़ाईं। तत्पश्चात युवा गायक श्री योगेश आर्य के सुन्दर सुमधुर भजनों का आनन्द सभी ने लिया। पं. विजय पाल शास्त्री का **श्राद्ध तर्पण** विषय पर सारगर्भित प्रभावोत्पादक प्रवचन हुआ। अनेक आर्य परिवार से उपस्थित सम्माननीय पूजनीय वयोवृद्धों (माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी) आदि को आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के पदाधिकारिगण एवं सक्रिय सदस्यों ने माल्यार्पण कर, थर्मस बोतल भेंट कर सम्मानित किया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के प्रधान श्री मिठाईलाल सिंह आर्य समारोह के मुख्य अतिथि थे। आपने सबको शुभाशीष प्रदान किया। आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के महामंत्री श्री संगीत आर्य ने उपस्थित जनसमूह का आभार व्यक्त किया। समस्त कार्यक्रम का संचालन मंत्री रमेश आर्य ने किया। तत्पश्चात् शान्तिपाठ एवं जयघोष हुआ। सभी ने अल्पाहार का आनन्द लिया।

आर्य समाज सांताक्रुज़ में

आचार्य अरुण ब्रह्मचारी के मार्गदर्शन में ६ अक्तूबर से ११ अक्तूबर २०१५ तक '' ध्यान योग शिबिर'' का आयोजन हुआ। इस शिबिर में लगभग १०० व्यक्तियों ने भाग लिया। आचार्य जी ने दर्शन शास्त्र के माध्यम से जीवन का उद्देश्य समझाया और कैसे अच्छे से हमे जीना है यह बतलाया। साथ ही साथ सूक्ष्म ध्यान कैसे किया जाय यह साधकों को बडी बारीकि से बताया। ओ३म् तथा गायत्री मन्त्र का ध्यान भी समझाया।

उपासना-विधि

पं. राजेन्द्र

मूर्तिपूजा के अभाव में हमारी उपासना-विधि क्या हो? यह एक प्रश्न है, प्राय: जिसे या तो जटिल समझा जाता है या जटिल बनाकर सर्वसाधारण के सन्मुख उपस्थित किया जाता है। जैसा कि हमने इस पुस्तक में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है- मूर्तिपूजा का प्रारम्भ महाभारत-काल के पश्चात् हुआ है और उसका हमारे प्राचीन वैदिक धर्म और संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस समय इस देश में मूर्तिपूजा का प्रचार नहीं था, उस समय जनसाधारण की एक सर्वाङ्गपूर्ण उपासनाविधि थी। इस विषय पर हमारे धर्मशास्त्र और इतिहास पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। तब क्यों इस प्रश्न को इतना जटिल समझा जाता है? बात स्पष्ट है, मूर्तिपूजा के समर्थक इसकी आड़ में उसको जीवित रखना चाहते हैं।

यद्यपि योगविधि का कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं है जो जनसाधारण की पहुँच से परे हो, तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य उच्चकोटि का वैज्ञानिक, साहित्यकार एवं कलाकार नहीं बन सकता, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति योगी बनने की क्षमता नहीं रखता। यह सत्य है कि जो जितना परिश्रम करता है उसे उतना फल अवश्य प्राप्त होता है। परन्तु प्रत्येक जीव अपने पूर्व संस्कार तथा उस वातावरण से जिसमें कि उसका पालन-पोषण अथवा विकास हुआ है प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। 'जीवन' जन्मान्तर के संस्कारों का पुञ्ज है, इसे बिना समझे हम इस सांसारिक विषमता को भली भाँति नहीं समझ सकते। अत: एक ऐसी उपासना-विधि की जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपनी भौतिक उन्नति के साथ आत्मविकास भी कर सके, आवश्यकता सदा और सर्वत्र अनुभव हुआ करती है। प्राचीन आर्यजाति इस विधि से अनभिज्ञ नही थी। हमारे धर्मशास्त्र प्रात:सायं नित्य नैमित्तिक रूप से प्रत्येक नर-नारी एवं बाल-वृद्ध को संध्या करने का बलपूर्वक उपदेश देते हैं। हमारा प्राचीन इतिहास उसका साक्षी है, जिसको हमने यथास्थान सिद्ध किया है। आज भी मूर्तिपूजा के प्रसार से यह विधि लोप नहीं हुई, यह दूसरी बात है कि समय के हेर-फेर से उसका कुछ रूप बदल गया हो।

यह सन्धोपासना-विधि योग के आधार पर निर्माण की गई है। प्रत्येक अपनी अभिरूचि के अनुसार यदि वह चाहे तो इसकी सहायता से उत्तरोत्तर अपने आत्म-विकास द्वारा समाधि-अवस्था तक पहुँच सकता है। आचमन, मार्जन, प्राणायाम, उपस्थान तथा गायत्री मंत्र का जाप आदि समस्त विधि सरल एवं सुबोध है और प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति थोड़े-से प्रयत्न और अभ्यास से उसे हृदयङ्गम कर सकता है। परन्तु फिर भी प्रश्न रह जाता है, अज्ञ जन-समुदाय के लिए, जिसकी गणना हमारे देश में दुर्भाग्य से आज ८० प्रतिशत के लगभग है, किस विधि का प्रचार किया जाए? योगदर्शन जैसा कि पूर्व लिख चुके हैं, प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग के लिए चाहे वह विद्वान् हो अथवा अविद्वान्, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, उपासना-विधि का समान रूप से वर्णन करता है। अशिक्षित समुदाय के लिए 'ओंकार जाप' की सरल विधि योगदर्शन में विद्यमान है- **तज्जपस्तदर्थभावनम्।** (योगदर्शन, समाधिपाद, सूक्त २८) ओ३म् का जाप और उसका अर्थचिन्तन एक अत्यन्त सरल विधि है, जिससे बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित सभी समान लाभ उठा सकते हैं। इसी भाँति गायत्री मंत्र के अर्थसहित जाप का अभ्यास भी थोड़े-से परिश्रम से किया जा सकता है। गायत्री मंत्र-जाप का हमारे धर्मशास्त्र में ओंकार-जाप की भाँति बड़ा माहात्म्य है। मंत्र-जाप भी चित्त की एकाग्रता का एक साधन है। अत: साधारण शिक्षित लोग उससे समुचित लाभ उठा सकते हैं।

प्रणव अथवा मंत्रजाप में जिस बात की विशेष आवश्यकता है और जिसे दुर्भाग्यवश पौराणिक काल में सर्वथा भुला दिया गया था, वह 'अर्थ विचार' है। एक हिन्दू समझता है कि बिना अर्थ-विचारे मंत्र-जाप मात्र से ही उसके पाप नष्ट हो जाते हैं, किन्तु जब तक हम मन्त्रार्थ नहीं जानते तब तक हम उससे पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते और न उससे हमारे विचार ही प्रभावित हो सकते हैं। जप का उद्देश्य विचारों की शुद्धता और मन की एकाग्रता है। यदि इससे इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है तो उसका महत्त्व तोते की रट से अधिक नहीं। जप के साथ अर्थ-विचार अनिवार्य है।

प्रत्येक व्यक्ति को पञ्च यज्ञों के नित्य अनुष्ठान का आर्यधर्म पद-पद पर उपदेश देता है। इन्हीं आह्निक कर्मों में एक ब्रह्मयज्ञ है। सन्ध्या, जप, स्वाध्याय और प्रवचन-ये सभी ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत हैं, अर्थात् सायं-प्रात: ईश्वरोपासना, मंत्रजाप, वेदादि सद्ग्रन्थों का नियमपूर्वक अध्ययन किया है उसे दूसरों पर प्रकट करना, ये प्रत्येक के लिए नित्य नैमित्तिक कर्म हैं। परन्तु हिन्दू-समाज में जहाँ ईश्वरोपासना का स्थान मूर्तिपूजा ने ले लिया है, वहाँ स्वाध्याय का या तो सर्वथा अभाव हो गया या रामायण, भागवतादि इतिहास-पुराणों ने ले लिया, और वेदशास्त्र, स्मृति आदि सद्ग्रन्थों का अध्ययन लुप्तप्राय हो गया। सर्वसाधारण का धर्मविषयक ज्ञान राम और कृष्ण की कथाओं से अधिक कुछ नहीं है। इसका एक अन्य कारण यह भी है कि पौराणिक काल में वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित कर दिया गया। वैदिक काल में वेदाध्ययन पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऐसी अवस्था में यदि वेदादि उच्चकोटि के धार्मिक साहित्य का सर्वसाधारण से सम्पर्क न रहा तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आज हिन्दू जाति अपने प्राचीन धार्मिक साहित्य से बहुत कम परिचित है। उसका ज्ञान केवल कुछ पौराणिक एवं ऐतिहासिक गाथाओं तक ही सीमित है। अत: आर्य धर्म को पुनर्जीवित करने के लिए यह

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-६ अंक-१० मुम्बई अक्तूबर - २०१५ | पृष्ठ-१६ | मूल्य- रु. ९/-

आश्विन २०७१ (२०१५)

Post Date : 25-10-2015

MH/MR/N/136/MBI/-13-15
MAHRIL 06007/31/12/2015-TC

पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८०० / २६६०२०७५

प्रति,

टिकट

परमावश्यक है कि हम हिन्दुओं में अपने प्राचीन धार्मिक साहित्य के लिए पुन: अभिरूचि उत्पन्न करें।

पञ्च यज्ञों में दूसरा स्थान देवयज्ञ का है, जिसका दूसरा नाम अग्निहोत्र अथवा हवन है। इसका भी आर्य-जीवन में ब्रह्मयज्ञ की भाँति मुख्य स्थान है। सन्ध्या की भाँति इसका भी प्रात:सायं नित्यप्रति करने का विधान है, जैसा कि हम पूर्व वर्णन कर चुके हैं। महाभारत-युद्ध काल तक इन दोनों यज्ञों का हमारी दिनचर्या में विशेष महत्त्व रहा था। हमारे पतन के साथ इस यज्ञविधि का भी पतन हुआ। रामायण-काल में राम को इन्हीं यज्ञों के रक्षार्थ राक्षसों से घोर युद्ध करना पड़ा, परन्तु वही रुधिर-मांस जो उस समय यज्ञों को अपवित्र करता था, पशुबलि के रूप में यज्ञों में डाला जाने लगा। गौ-जैसे उपकारी और निर्दोष पशु की भी यज्ञों में बलि देना धर्म समझा जाने लगा। फलत: बौद्ध काल में यज्ञ जैसे पवित्र धार्मिक कृत्य का इसी दोष के कारण परित्याग कर दिया गया। अग्निहोत्र का एक नाम देवपूजा भी है। देव शब्द की भाँति देवपूजा को भी मूर्तिपूजा समझा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आज आप किसी हिन्दू से देवपूजा का शब्दार्थ पूछें, वह तुरन्त मन्दिरों में स्थित मूर्तियों की पूजा कह देगा। इसी प्रकार प्राचीन काल में देव मन्दिर, देवालय, मण्डप शब्दों का प्रयोग यज्ञशालाओं के लिए प्रयुक्त हुआ करता था। किन्तु आज इन शब्दों को देखकर हम चौंक पड़ते हैं और समझने लगते है कि उस समय भी मूर्तिपूजा का प्रचार था। अब मन्दिर शब्द ही एक रूढ़ि बन गया है जिसका अर्थ मूर्तिपूजा का स्थान समझा जाता है। शिवालय की बनावट यज्ञशाला-जैसी है। मुम्बई प्रान्त में अब भी उसके लिए मण्डप शब्द प्रयुक्त होता है। शिवालय सर्वत्र चौकोण अथवा अष्टकोण बनाया जाता है। उसका शिखर, यज्ञाग्नि के शिखर के समतुल्य ही होता है। इसमें कोई आश्चर्य नही यदि किसी समय वाममार्ग-काल में इन्हीं यज्ञ-मण्डपों का रूपान्तर वर्तमान काल के शिवालयों में कर दिया गया हो। कुछ विद्वानों का ऐसा ही मत है। शिवालय के मध्य में शिवलिंग प्राय: एक गहरी गोलाकार वेदी में स्थापित होता है, जिसके सम्बन्ध में उनकी सम्मति है कि वह यज्ञवेदी के भग्नावशेष पर ही मूर्तिपूजा का भवन निर्माण हुआ है, केवल एक कल्पना ही नहीं है अपितु उसमें बहुत-कुछ तथ्य भी है। सन्ध्योपासना जहाँ व्यष्टि रूप से किया जाने वाला एक धार्मिक कृत्य है, वहाँ अग्निहोत्र समष्टि रूप से होने वाली नित्य नैमित्तिक क्रिया [illegible] प्रत्येक गृहस्थ प्रात:सायं सामूहिक रूप से सपरिवार अग्निहोत्र करें, [illegible] आर्य मर्यादा है। इसी प्रकार पक्ष, मास, चतुर्मास तथा षट्मास [illegible]प्ति पर सामूहिक अथवा सामाजिक अग्निहोत्र-समारोहों का महाभारत-काल तक इस देश में प्रचार था। दीपावली, शारदीय नवशस्येष्टि तथा होली (वासन्तीय नवशस्येष्टि यज्ञ) ऐसे यज्ञों के रूपांतर है। इसी प्रकार आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा एवं फाल्गुण पूर्णिमा चातुर्मास यज्ञों के अवशिष्ट मात्र हैं। अवश्मेध, यज्ञों का राष्ट्रीय स्वरूप है। उस समय इस देश में अग्निहोत्र का इतना प्रचार और महत्व था कि प्रत्येक शुभ अवसर पर अग्निहोत्र से ही कार्य प्रारम्भ होता था। हमारे संस्कारों की यज्ञप्रधानता आज भी हमें उस युग की याद दिलाती है। अग्निहोत्र द्वारा पञ्जदेव-आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथिवी की शुद्धि और संस्कार होता है। यही इनकी पूजा है और इसीलिए इसका नाम देव-यज्ञ अथवा देवपूजा है। जल-वायु की शुद्धि द्वारा अनायास ही अनेक संक्रामक रोगों से हमारी रक्षा होती है। यह निर्विवाद है कि अग्निहोत्र से हमारे मान और स्वास्थ्य पर एक अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति थोड़े-से व्यय और परिश्रम से स्वयं कर सकता है।

आर्य जाति अपने धर्म और संस्कृति से आज बहुत दूर हट चुकी है परन्तु अब भी उनके अंकुर बीजरूप से उसमें विद्यमान हैं। आवश्यकता किञ्चित् नेतृत्व और पथप्रदर्शन की है। हज़ारों वर्षों से अनेक सम्प्रदायों द्वारा वह पथभ्रष्ट होती रही है। धर्म के नाम पर अनेक कुसंस्कार और दुर्व्यसन उसमें घर कर गए हैं। तथापि राख की ढ़ेरी के नीचे दबी हुई चिंगारी की भाँति आज भी वैदिक भावनाएँ सर्वथा विलुप्त नहीं हुई। यदि हिन्दू समाज के कर्णधार स्वार्थ से ऊपर उठकर उस दैवी अग्नि को प्रज्वलित करना चाहें तो वह अब भी संसार को पुन: देदीप्यमान करने की क्षमता रखती है। इस जाति ने अनेक दुर्दिन देखे हैं, फिर भी उसका अपना प्राचीन गौरव सर्वथा विलुप्त नहीं हुआ। वह आज कङ्काल होनें पर भी अनेक बहुमूल्य रत्नों की स्वामिनी है, और अब भी संसार को कुछ दे सकती है। क्या इसके लिए हम कुछ आत्मोत्सर्ग करेंगे?